International Journal of Advance and Applied Research
www.ijaar.co.in
ISSN – 2347-7075 Impact Factor – 7.328
Peer Reviewed Bi-Monthly
Vol. 11 No. 4 March-April 2024

स्त्री के बहुस्तरीय शोषण की गाथा- 'शिकंजे का दर्द'

कुमार सत्यम
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, भूपेंद्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय
DOI- 10.5281/zenodo.11059139

सारांश:-
'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा में व्यक्त दलित स्त्री का जीवन शैली, संघर्ष एवं उत्पीड़न की गाथा प्रस्तुत की गई है। 'शिकंजे का दर्द' की लेखिका सुशीला जी द्वारा दलित नारी के उत्थान हेतु अथक प्रयास का वर्णन, चाहे विभिन्न मंचों, गोष्ठियों, संगठनों के माध्यम से हो या अपने द्वारा संघर्स की गाथा चित्रित करके हो।

बीज शब्द:- स्त्री, दलित, शोषण, संघर्स, पीड़ित, आत्मकथा

प्रस्तावना:

स्त्री की स्थिति उत्तर वैदिक काल से ही दयनीय होने लगी थी। हजारों वर्षों से पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री विभिन्न प्रकार की प्रताड़नाओं को सहती आ रही है। उनपर कई प्रतिबंध लगी होती है। स्त्री अपनी वास्तविक स्थिति एवं समाज के विकृत चेहरे को आत्मकथा के माध्यम से अभिव्यक्त करती है। 'शिकंजे का दर्द'(सुशीला टाकभौरे) एवं 'दोहरा अभिशाप'(कौशल्या वैसंत्री) के माध्यम से लेखिका ने नारी शक्ति को प्रतिकूल परिस्थिति को अनुकूल स्थिति में संघर्ष एवं साहस से बदलने की प्रेरणा दी। 'शिकंजे का दर्द' एक दलित आत्मकथा है। वाल्मीकि जी के मत दलित आत्मकथा के बारे में है कि "किसी भी दलित द्वारा लिखी आत्मकथा सिर्फ उसकी जीवन गाथा नहीं होती बल्कि उसके समाज की जीवन गाथा भी होती है।" सुशीला टाकभौरे 'शिकंजे का दर्द' की लेखिका भी दलित समुदाय से आती है। उनका मानना है कि "जो मेरा सम्मान है, वह मेरे जाति समुदाय का है और जो मेरे जाति समुदाय का अपमान है, वह मेरा ही अपमान है। मैं अपने लिए नहीं सबके लिए लिखती हूँ। 'मेरे हिस्से के सूरज' कविता संग्रह, संघर्ष कहानी संग्रह, नंगा सत्य नाटक, रंग और व्यंग्य नाटक संग्रह इसके प्रमाण हैं। इन पुस्तकों में दलित, पीड़ित, शोषित समाज की स्थिति का चित्रांकन है, साथ ही संघर्ष और मुक्ति के लिए संदेश है।"[1]

दलित समुदाय समाज का उपेक्षित वर्ग है। समाज की दुत्कार तो सुनना ही पड़ता था। अगर स्त्री दलित समुदाय की हो, तो उसे एक तो समाज से दुत्कार मिलती है और दूसरा परिवार से।दलित स्त्री अपेक्षा रखती है कि कोई उसके दुख-दर्द को समझे, उन्हें सांत्वना दे। लेकिन ठीक इसके विपरीत दलित स्त्री को सर रखकर रोने के लिए भी किसी का कंधा नहीं मिलता। दलित स्त्री एक तो अपने घर का सारा कार्य करती है, उसके बाद उच्च वर्ग के घर में भी दो जून की रोटी के लिए समय से अधिक देर तक काम करती रहती है। जहाँ उन्हें हमेशा अपमानित होना पड़ता है। स्नेह की बू जरा सी भी नहीं आती।लेखिका रहती है कि "शिकंजे का दर्द में संताप है दलित होने का, स्त्री होने का। इसमें शोषित, पीड़ित, अपमानित, अभावग्रस्त दलित जीवन का व्यथा है। स्त्री होना ही जैसे व्यथा की बात है। चाहे हमारा देश हो या विदेश के अन्य देश, हर जगह शोषण उत्पीड़न का शिकार स्त्री ही रही है। जिस देश में वर्ण भेद, जाति भेद की कलुषित परम्पराएं हैं वहां दलित स्त्री शोषण की व्यथा और भी गहरी हो जाती है। सदियों से तिरस्कृत और अभावग्रस्त परिस्थितियों में रहने के लिए मजबूर किये गये दलित जीवन की व्यथा-कथा का दर्द 'शिकंजे का दर्द' में समाहित है। 'शिकंजे का दर्द' लिखने का उद्देश्य दर्द देने वाले शिकंजे को तोड़ने का प्रयास है।"[2] दलित स्त्री हमेशा कुंठित रहती है। वह आजाद होना चाहती है।

सुशील जी खुद को अपने परिवार और समाज से संघर्ष करके तो विजयी सिद्ध कर दी। लेकिन अन्य दलित स्त्री का क्या? जो अभी भी वर्ण व्यवस्था का शिकार है, जिन्हें सुबह से शाम तक निम्न स्तरीय काम करना पड़ता है। शादी-विवाह या अन्य किसी आनंदोत्सव या शोकाकुल परिवार को दलित द्वारा निर्मित आवश्यक सामग्री पहुंचाई जाती है तो उन्हें घर के दरवाजे से दूर ही खड़ा रहने एवं सामान नीचे रखने का आदेश देते हैं और सामग्री लेने के बाद उसे धोकर घर में रखते हैं। रुपया भी हाथों में न देकर नीचे जमीन पर फेंक देते हैं। भोज-भात में भी सबके खाने के बाद या दलित के लिए अलग जगह खाने की व्यवस्था की जाती है। दलित स्त्री सुबह भोजघर में बासी खाना लेने जाती, जो भोज में अक्सर बच जाया करता है। स्त्री उपवास रखती है ताकि उसके पति, बच्चे, भाई आदि भोजन कर सके। उनके साथ रह सके, मुसीबतों से उसकी रक्षा कर सके क्योंकि "मनुस्मृति में स्त्रियों को हमेशा पिता, भाई, पति और पुत्रों के संरक्षण में रहने का निर्देश दिये गये हैं। स्त्रियों को शारीरिक और मानसिक रूप से कमजोर बनाकर रखा जाता है। 'रक्षाबंधन' भी ऐसा ही त्यौहार है।"[3]

उन दिनों दलित समुदाय में पढ़ाई-लिखाई का कोई माहौल नहीं था। किसी-किसी दलित बस्ती में पढ़ने वाला दिखता था। दिनभर परिवार के सभी सदस्य पेट की अग्नि को बुझाने के लिए प्रयासरत रहते थे। लड़कियों को पढ़ने से

साफ तौर पर मन रहता था। लेकिन लेखिका ने पिता के मना करने के बावजूद अपने माँ और नानी के मदद से न सिर्फ पढ़ना प्रारंभ की बल्कि शादी के बाद तक पढी और अंततोगत्वा पी एच डी भी कर डाली। हालांकि यह कार्य ईतना आसानी से नहीं हुआ। उन्हें समाज और परिवार के विरोध का सामना करना पड़ा। उन्हें भी कई जगहों पर समझौता करना पड़ा। सुशीला जी को अपने से बड़े आयु के व्यक्ति 'टाकभौरे' से शादी करनी पड़ी। लड़के की उम्र 37 वर्ष की थी। इन दोनों का विवाह अनमेल विवाह था। लेखिका और टाकभौरे जी में अनबन होते रहता था।

सुशीला जी अपने पति से प्रताड़ित होती रहती थी। उन्होंने आत्मकथा में व्यक्त किया कि "स्कूल से या बाहर से आने के बाद कभी-कभी टाकभौरे जी मेरे सामने पैर लंबे कर देते। मेरा ध्यान न रहने पर हाथों से इशारा करके जूते उतारने को कहते। मैं चुपचाप उनके पैरों में बैठकर जूते के फीते खोलते और जूते-मौजे उतारती।"[4] टाकभौरे जी की मनमानी चलती थी। लेखिका को उनका रूपया भी नहीं देते थे। अपने नाम फ्लैट भी करवाना चाहते थे। लेकिन लेखिका ने विरोध जताया और फ्लैट खुद अपने नाम की। खर्च को लेकर बहस करने पर टाकभौरे जी को चप्पल से समझाती है। अंत में लेखिका दृढ़ निश्चय करती है कि "समाज की परंपराएं स्त्री विरोधी है इन्हें तोड़कर ही स्त्री स्वतंत्रता, समता और सम्मान पायेगी, तब वह अबला नहीं रहेगी, सबला बन जाएगी।"[5] टाकभौरे जी घर में पत्नी से दलित जैसा व्यवहार करते थे। जबकि पड़ोसी ब्राह्मणी के साथ अच्छे से पेश आते थे। जितना निम्न स्तरीय काम होता है सभी दलित करते हैं। कचरा उठाने वाला भी दलित हीं होते हैं। लेकिन कचरा उठाने वाला सुशीला जी को हेय दृष्टि से देखता था। इतना ही नहीं दलित के सभी वर्गों में सुशीला जी को हीं निम्न जाति का समझते थे। स्कूल के विषय में कहती है "स्कूल में ढीमर, पासी, खटिक, कंजर, चमार, बसोर, बलाई आदि अनुसूचित जाति के बच्चे पढ़ते थे मगर ऊन सब में निम्न अछूत मुझे ही माना जाता था।"[6]

दलितों में जो दलित ढूंढने की मनोवृत्ति है उससे बचना चाहिए। सभी दलितों को आपस में एक-दूसरे से मिलकर रहना चाहिए एवं एक-दूसरे का सम्मान करना चाहिए। सबों की कोशिश होनी चाहिए कि वर्ण व्यवस्था के तहत जो जीविकोपार्जन हेतु कार्य कर रहे हैं, उसे छोड़कर अन्य कार्य करें। उच्च शिक्षा प्राप्त करें और सरकारी नौकरियों में पद प्राप्त करें। लेखिका मानती है कि "हमारे जाति समुदाय के लोग अपने पैतृक रोजगार से मुक्ति पाने और सम्मान का जीवन जीने के लिए संघर्ष नहीं करते हैं"[7] लेकिन फिर भी लेखिका दलितों की आवाज को अपनी लेखनी के माध्यम एवं विभिन्न मंचों से बुलंद करने का काम करती है। लेखिका संगठनो तथा गोष्ठी के माध्यम से भी दलितों को उत्साहित, जागरूक तथा प्रेरित करती रही। लेखिका तथा अन्य दलित स्त्रियाँ बचपन से अपने घर एवं समाज में प्रताड़ित होती रही एवं शादी के बाद ससुराल में। स्त्रियों की दोनों जगह एक सी स्थिति रही है। यह दर्शाता है कि स्त्रियाँ बहुस्तरीय शोषण का शिकार हुई है।

कुमार सत्यम

संदर्भ ग्रन्थ:-

1. शिकंजे का दर्द; सुशीला टाकभौरे; पृष्ठ: 269
2. वही; पृष्ठ: 09
3. वही; पृष्ठ: 34
4. वही; पृष्ठ: 143
5. वही; पृष्ठ: 144
6. वही; पृष्ठ: 47
7. वही; पृष्ठ: 262